RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-07
July-2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]
DOI: https://doi.org/10.31305/rrijm.2020.v05.i07.030

सूफीमत बनाम राजसत्ता

गजेन्द्र कुमार

शोधर्थी, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

ARTICLE DETAILS

Article History
Published Online: 30 July 2020

Keywords
यहूदी पैगम्बरों, धार्मिक, इस्लाम, अनुयायियों, अरबी कुरान, अरबी दीक्षा

ABSTRACT

सूफीमत का सम्बन्ध शामी विचारधारा से प्रभावित इस्लाम से है। इस्लाम अपने उदयकाल से ही न केवल धार्मिक वरन् मूलतः राजनीतिक व्यवस्था है। "मुहम्मद का उद्देश्य केवल धार्मिक नहीं था यहूदी पैगम्बरों के बारे में भी वह जानते थे, कि धर्म और शासन दोनों को वह अपने हाथों में रखते थे। इसके अतिरिक्त वह अपनी अरब जाति की दुर्दशा से भी खिन्न थे।...अरब के रेगिस्तान में बिखरी हुई शक्ति के महत्व को उन्होंने जल्दी समझ लिया और यह भी देख लिया कि यहूदी पैगम्बरों की तरह एक धार्मिक राजनीतिक व्यवस्था के अधीन उन्हें एकत्रित किया जा सकता है। चालीस की उम्र तक पहुँचते उन्हें मालूम हो गया था कि यहूदी या ईसाई जैसे पराये धर्म की सहायता से अरबों को एकता के सूत्र में नहीं बाँधा जा सकता न अरबों की राजनीतिक सामाजिक दुर्बलताओं को दूर किया जा सकता है। यह प्रधान कारण था जो कि यहूदी और ईसाई धर्म के प्रमाण मानते हुए भी मुहम्मद ने एक नये धर्म (इस्लाम) का प्रचार किया।"[1]

राहुल जी द्वारा इस्लाम की स्थापना के सन्दर्भ में दिये मत से इस्लाम की स्थापना को लेकर मुहम्मद साहब का मूल ध्येय स्पष्ट होता है। यह मुख्य ध्येय है कि मुहम्मद अरब साम्राज्य का सामारिक विस्तार चाहते थे साथ ही स्वयं को अरब सत्ता के केन्द्र में। उनकी इस इच्छापूर्ति का माध्यम बना उनके द्वारा प्रतिपादित नवीन धर्म–इस्लाम। लेकिन मुहम्मद ने अपने सेनानी रूप को बनाये रखने के साथ ही सादगी से जीवन यापन किया। किन्तु मुहम्मद की मृत्यु के बाद उनके अनुयायियों का ध्यान मुहम्मद की सादगी की तरफ नहीं गया। "उनके अनुयायियों ने उनके भावों पर ध्यान नहीं दिया। उनके सामने मुहम्मद का वह रूप नाच रहा था जो इस्लाम के प्रसार के लिए संग्राम में निरत था, संहार में मग्न था, संग्रह में लगा था, ध्वंस और धावा को ध्येय समझता था। चट उन्होंने उसी का ताडंव आरम्भ किया। मुहम्मद के एकदेशीय संदेश को, अरबी कुरान और अरबी दीक्षा के आधार पर विश्वव्यापक बनाने की उग्र चेष्टा आरम्भ हुई।"[2]

इस्लाम का शासकीय रूप अपने उदयकाल से ही साम्राज्य विस्तार को अपना साध्य मानता है। इस हेतु उसने साधन रूप में धर्म एवं ख्यात धार्मिक व्यक्तियों का उपयोग किया। आरम्भिक चारों खलीफाओं ने कुछ हद तक सादगी का उपयोग करते हुए अरब साम्राज्य का विस्तार किया। अली की मृत्यु के बाद 661 ई0 में म्वाविया द्वारा उमैया वंश की नींव रखी गयी। उमैया वंश का शासन (661ई0–749ई0) काल पूर्णतः विलासिता एवं घोर अराजकता का था। उमैया वंश के शासकों का सिर्फ एक ही लक्ष्य था– अरब साम्राज्य का विस्तार। किन्तु इसी समय साधकों का एक ऐसा वर्ग था जिसे इस मार–काट से कोई लेना–देना न था। वह वर्ग परमतत्व के वास्तविक स्वरूप को जानना चाहता था। उससे साक्षात्कार प्राप्त करना चाहता था। इस वर्ग की उपासना का मार्ग अरब साम्राज्य के विस्तार से होकर नहीं गुजरता था। यह वर्ग तलवार की साधना द्वारा मार–काट करके अपने रसूल का प्रिय–पात्र भी नहीं बनना चाहता था। यह वर्ग अपनी प्रेम–साधना के माध्यम से परम साक्षात्कार के लिए लालायित था। वह अपने ज्ञान चक्षुओं से परम–तत्व के साथ तादात्मय के लिए उत्सुक था। अतः इसीलिए इस वर्ग के साधक "सूफियों ने अपनी साधना में मध्यस्थ की अनावश्कता प्रतिपादित करके मुल्लाओं आदिक धार्मिक व्यक्तियों की सत्ता तथा महत्ता पर आघात किया तथा स्वयं को आध्यात्मिकता के उच्च स्तर पर पहुँचाकर 'सत्य तत्व' घोषित किया। परमेश्वर से इस प्रकार अबाध सम्मिलन प्राप्त करके उन्होंने शासकों के ईश्वरीय प्रतिनिधि स्वरूप पर भी 'आघात किया। अतः राज्य वर्ग और धर्म संघ दोनों ही सूफियों के स्वतन्त्र चिन्तन के कारण उनके विरोधी हो गये इसीलिए दोनों ने उनका दमन किया।"[3] लेकिन इन साधकों को पूरा विश्वास था कि जब "कयामत के दिन मुहम्मद साहब खुदा के सामने सबको पेश करने लगेंगे तब कुछ लोग भीड़ से अलग दिखाई देंगे। मुहम्मद सहाब कहेंगे 'ऐ खुदाबन्द'! ये लोग कौन है, मैं नहीं जानता। खुदा उस वक्त कहेगा 'ए मुहम्मद! जिनको तुमने पेश किया वे तम्हें जानते हैं, मझे नहीं जानते। ये लोग मुझे जानते हैं, तुम्हें नहीं जानते"[4]

आरम्भिक काल के सूफियों में हसन अल बसरी (मृ0 728ई0) का नाम विख्यात है। सभी सूफी इनको अपनी परम्परा में सम्मलित करते हैं इन्होंने अपने साथ रहने वाले एक फकीर

RRIJM 2015, All Rights Reserved

सैयद जुबैर से कहा कि संसार में तीन चीजों से बचना चाहिए–[5]

1. भूलकर भी बादशाहों से सम्पर्क न रखे।
2. किसी स्त्री के साथ एकान्त में न रहें।
3. किसी की बातों पर कान न दे।

हसन द्वारा जुबैर को दी गयी शिक्षा मूलतः इस्लाम की मान्यताओं के प्रतिकूल हैं। अब चूँकि समस्या यह है कि इस्लाम अपने मूल चरित्रानुसार ख्यात धार्मिक व्यक्तियों का उपयोग साम्राज्य विस्तार के लिए करता है और सूफियों की मान्यता है कि भूलकर भी बादशाहों से सम्पर्क न रखे। लेकिन "हसन की मृत्यु के बाद सम्पूर्ण ईरान में सूफीमतवाद की इतनी प्रबल लहर उठी कि सारा इस्लामी जगत् उसकी हिलोरों में डूबने–उतराने लगा।''[6]

आरम्भिक सूफियों में ही राबिया अल–अदाविया का नाम बड़ा प्रसिद्ध है। राबिया को न स्वर्ग की लालसा थी और न नरक में जाने का भय। परमात्मा के प्रति उसका प्रेम परमात्मा को पाने के लिए ही था। "राबिया ने बताया कि एक बार सपने में उसने हजरत मुहम्मद को देखा। पैगम्बर ने पूछा–"राबिया, क्या तू मुझसे प्रेम करती है? राबिया ने उत्तर दिया– "हे अल्लाह के रसूल, कौन ऐसा है जा तुमसे प्रेम नहीं करता? लेकिन परमात्मा के प्रेम ने इस प्रकार से मेरे ऊपर अधिकार जमा लिया है कि उसके सिवाय और किसी से प्रेम या घृणा करने का स्थान मेरे हृदय में रह ही नहीं गया है।"[7]

लेकिन राबिया और उसकी सहेलियों को शरीयत विरुद्ध भावनाओं के लिए घोर प्रताड़ना का सामना करना पड़ा। क्योंकि इन साधिकाओं ने रसूल की प्रेममयी उपेक्षा की थी। यह प्रेममयी उपेक्षा भी रसूल (मुहम्मद) के सेनानियों को रास न आयी। उनके अनुसार तो अल्लाह तक जाने का इस सृष्टि में सिर्फ एक ही मार्ग है जो उनके रसूल के घर से गुजरता है इस रसूली प्रेममयी उपेक्षा के खामियाजे के रूप में बरजा जैसी साधिका के हाथ–पैर काट दिये गये।

खलीफा मुक्तदिर के समय में एक पहुँचे हुए विज्ञ सन्त मंसूर अल हल्लाज थे। इनका पूरा नाम अबुलमुगीस अल–हुसैन बिन मंसूर अल–हल्लाज था। जिन्हें राजसत्ता द्वारा अनल हक' (मैं ही ब्रह्म हूँ) की घोषणा के कारण फाँसी पर चढ़ा दिया गया। फाँसी पर चढ़ाने से पहले लगभग 9 वर्ष जेल में रखा गया। जेल से बाहर लाकर उसे तीन सौ कोड़े लगाये गये और प्रत्येक प्रहार के साथ वह कह उठता 'हुसेन भय न करना' और किसी भी तरह से उसने 'अनल हक' कहना नहीं छोड़ा। ...सूली पर चढ़ाते समय अनेक निष्ठुरों ने उसके ऊपर पत्थरों की वर्षा की लेकिन वह एक शब्द भी नहीं बोला। जब उसके हाथ में छेद किया गया तो भी उसके चेहरे पर मुस्कान थी। इसके बाद उसकी दोनों आँखें निकाल ली गयीं। कितने निष्ठुरों ने उसे पत्थरों से मारा। इसके बाद हाथ पाँव काट डाले गये। इसके बाद उसके नाक और कान काट डाले गये।....उस समय हुसेन ने कुरान की दो आयतें पढ़ी। इसके बाद उसकी जीभ काट डाली गयी। संध्या हो गयी थी, उसी समय खलीफा का हुक्म आया कि 'उसका सिर काट डालो' उसक बाद वह जला दिया गया''[8]

मंसूर की हत्या कर्बला के मैदान में हुई। हुसैन की मौत से कहीं ज्यादा त्रासद थी हुसैन की मौत तो केवल सत्ता संघर्ष का ही प्रतिफल थी, मगर मंसूर की हत्या उस विचार स्वायत्तता का अन्त थी जो कि मनुथ्य का नैसर्गिक अधिकार हैं मनुष्य के अन्त से कई गुना ज्यादा त्रासद है–विचार का अन्त।

यह कितनी मजेदार बात है कि जिस हुसैन की मृत्यु पर आज भी मुस्लिम समाज अपनी छाती पीटते नहीं अघाता उसी समुदाय में से मंसूर को याद करने वाला तक नहीं। शायद इसका मूल कारण है कि इस्लाम उस दर्शन को कभी स्वीकार ही नहीं कर पाया जो तर्क–वितर्क का हिस्सा है। "सूफीमत को एक दार्शनिक रूप देने वाला तथा सनातन पंथी इस्लाम के साथ उसका सामंजस्य बिठाने वाला अबु हमीद मुहम्मद अल–गज्जाली था।''[9] मुसलमानों ने उसे हज्जतुल इस्लाम (इस्लाम का संरक्षक) की उपाधि से विभूषित किया। गज्जाली ने सूफीमत और इस्लाम को एकमेव कर दिया। इस्लाम का अंग बनने से उसका राजसत्ता से भी विरोध लगभग समाप्त हो गया। "भारत में सूफीमत के आने के पूर्व उसका इस्लाम धर्म–संघ से विरोध समाप्त हो गया था। अधिकांश सूफी 'बाशरा' हो गये थे। वे अपनी विचार पद्धति को इस्लामी नियमों से सदैव अनुशासित करते रहे। अब सफीमत का विरोध शेख और मुल्लाओं से भी नहीं था और साथ ही उन्हें राजकीय प्रश्रय भी प्राप्त था।''[10]

शेख निजामुद्दीन औलिया अपने समय के विख्यात सूफी थे जिनके सुल्तानों के साथ घनिष्ठ ताल्लुकात थे। औलिया जैसे सूफी इस समय इस्लामी साम्राज्य विस्तार की आराधना में मग्न रहते थे। "एक बार अलाउद्दीन खिलजी ने आकर कदम बोसी (नत मस्तक) की इच्छा प्रकट की। शेख ने उत्तर दिया कि सुल्तान को आने की आवश्यकता नहीं है मैं उसकी अनुपस्थिति में, उसके लिए बहुत दुआएँ करता रहता हूँ।''[11] "एक बार अलाउद्दीन ने वारंगल विजय के लिए प्रार्थना की, तो शेख ने उत्तर दिया कि यह विजय क्या महत्व रखती है, हम तो बड़े विजय की आशा रखते हैं।''[12]

औलिया द्वारा सुल्तान की अनुपस्थिति में विजय की दुआ करना और वारंगल से बड़ी विजय की उम्मीद रखना। इससे पता चलता कि भारत में आने पर सूफियों का एक मात्र उद्देश्य रह गया था इस्लामी साम्राज्य विस्तार की इच्छा और साथ में अपनी सन्त की छवि का उपयोग करते हुए जनता और सैनिकों में इस विश्वास की पुष्टि करना कि फलां पहुंचे सन्त ने भी विजय की भविष्यवाणी की है। "एक बार कुतबुद्दीन मनव्वर से मुहम्मद बिन तुगलक ने पूछा। कि जब मैं हांसी पहुँचा तो आप हमसे मिलने क्यों नहीं आये। शेख ने उत्तर दिया मैं इस स्थिति में नहीं था, एक कोने में बादशाह और उसकी सल्तनत की दुआ में व्यस्त था।''[13]

"शेख शरफुद्दीन पानीपती सुल्तान फिरोजशाह तुगलक से बहुत प्रेम रखते थे। जब भी मीठी खीर पकाते थे, खाकर बचे हुए खाने को अपने खादिम को देकर कहते थे इसे मेरे बेटे फिरोज के लिए ले जाओ।"[14]

औलिया के प्रधान शार्गिद अमीर खुसरो भी गठजोड़ में माहिर थे। सरकार और मठ दोनों के साथ जैसा तालमेल खुसरो ने बैठाया वैसा तालमेल कोई दूसरा न बैठा सका। "अमीर खुसरो ने दिल्ली के 11 सुल्तानों को राजसिहासनारूढ़ होते देखा था। सात सुल्तानों के दरबार में वे स्वयं रहे थे।''[15] जबकि यह भारत में इस्लामी शासन का वह समय था जब मुस्लिम शासन 'ताज या तख्ते' के सिद्धान्त पर टिका था। सात सुल्तानों के दरबार में रहने के बावजूद भी उस तख्ते का भय कभी–भी खुसरो को नहीं सताया? "दूसरी तरफ खुसरो ने यह भी कमाल दिखालाया कि दिल्ली की गद्दी पर एक के बाद दूसरे सुल्तान प्रायः पहले सुल्तान को कत्ल करके बैठे, लेकिन सरकारों की इस हिंसात्मक उठा–पटक में खुसरो बराबर राजकवि बने रहे और तरक्की भी करते रहे।''[16] लेकिन इस शासकीय उठा–पटक में खुसरो का कितना योगदान था यह अलग बात है। मगर इतना तो साफ है कि कुछ न कुछ तो था जिससे खुसरो सभी सुल्तानों के साथ निर्वह्न कर पाये।

सूफी कवि मुल्ला दाऊद की दृष्टि में फिरोज शाह का इस्लामी शासन कोई साधारण शासन नहीं वरन् पृथ्वी की आशीष से ही प्राप्त शासन है। उनकी इच्छा है कि सुल्तान युगों–युगों तक शासन करते हुए हमारे ऊपर अपनी कृपा बनाये रखे।

"देइ असीस पिरथमी यसुपुरौ बरूवाहा।
राजु करौ गढि ढीलरी जुगि–जुगि हम छाह"[17]

यह कितनी सोचनीय स्थिति है कि अब सूफियों को ईश्वर की कृपा की आवश्यकता नहीं वरन् फिरोज की कृपा की आवश्यकता है। राजकीय प्रशंसा का कितना गहरा भाव इन सूफियों के मन में है कि जायसी जैसा कवि भी उससे बच नहीं पाता उसे भी लगता है कि यह सम्पूर्ण संसार शेरशाह का मोहताज है–

"पातशाह तुम जग के जग तुम्हार मोहताज"[18]

यह कैसी बिडम्बना है कि जिनको ईश्वर का अभावी होना चाहिए वह बादशाह का अभावी है। न केवल स्वयं अभावी है वरन् उसे लगता है कि यह सम्पूर्ण जग भी उसी के अभाव से ग्रस्त है। उनकी नजर में सुल्तान इतना शक्तिशाली है कि उसकी जब सेना चलती है तब आकाश हिलने लगता है, इन्द्र डर के मारे थरथराता है और वासुकि जैसा नाग तो योही भागकर छुप जाता है

"डोलइ गगन इन्द्र डरि काँपा। बासुकि जाइ पतारहि चाँपा।''[19]

इस संसार का अद्वितीय शेरशाह जब चढ़ाई करता है तो जो गढ अब तक किसी से भी नहीं झुके वे तो बिना लड़े ही उसके चलने मात्र से ही चर–चर हो जाते हैं

"जो गढ़ नए न काऊ चलत होहिं सत चूर।"
जबहि चढ़इ पुहुमीपति सेरसाहि जगसूर।।[20]

जायसी को तो अब यह भी लगने लगा है कि पापों के प्रायश्चित के लिए ईश्वर की आराधना की आवश्यकता नहीं बल्कि शेरशाह को झरोखे से दर्शन देते वक्त कोई देख ले तो उसके पाप मिट जाते हैं

"पाप जाइ जौं दरसन दीसा ।।[21]

आलम अकबर की महानता में लिखते हैं कि विष्णु तो मर गया है। वासुकि, इन्द्र, कुबेर, गंधर्व, किन्नर ये सभी की सभी अकबर के दास होकर सुशोभित हैं। वैसे इन सभी देवताओं का कोई खास मूल्य पहले नहीं था। बल्कि अकबर के दास होने से इनके मूल्य में वृद्धि हुई है

गनु गंधव किन्नर सबै, जच्छ रहै होई चेर।।[22]

इन सूफी कवियों द्वारा शाहेवक्त की झूठी खुशामद को सिर्फ मसनवी शैली कहकर अवहेलना नहीं की जा सकती। यह इनके अर्न्तमन का वह भाव है जो इस्लामी साम्राज्य विस्तार की आकांक्षा रखता है। साथ ही वे स्वयं उस साम्राज्य विस्तार का हिस्सा भी बनना चाहते हैं सन्त का चोला ओढ़े कविताई के माध्यम से। एक तरफ कहा जाता है कि वे भारतीय संस्कारों में रचे बसे थे और पौराणिक सन्दर्भो से अवगत थे। अगर इनको पौराणिक सन्दर्भो की जानकारी ही थी तब तो यह भी पता होगा कि देवी–देवताओं को साधारण शासकों द्वारा पराजित नहीं किया जा सकता। अगर यह कहा जाए कि इन सूफियों का प्रमुख कार्य जनता में शासकीय स्वीकार्यता को बढ़ाना था तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इन्होंने जनता को यह विश्वास दिलाने में कोई कमी नहीं रखी कि उन्हें ईश्वर भी इन्हें सुल्तान के रूप में चाहता है।

अब इन साधकों की आत्मा की तृप्ति ईश्वर साक्षात्कार में न होकर हिंदुस्तान में इस्लामी झंडा फहराने में थी और इसी के लिए इनकी लेखनी भी चलती थी अमीर खुसरो जैसे सूफी के लिए अब सोमनाथ के मन्दिर का टूटना साधना का हिस्सा बन गया और इसका वर्णन करते हुए वे लिखते हैं

"इस प्रकार सोमनाथ के मन्दिर को मक्का की ओर झुकाया गया और जिस प्रकार पहले मन्दिर ने अपना सिर नवाया और बाद में समुद्र में जा गिरा, आप कह सकते हैं कि पहले उसने नमाज पढ़ी और बाद में स्नान किया।...ऐसा दारूल–कुफ्र, अर्थात् कुफ्र का देश, जो काफिरों का तीर्थ था, अब इस्लाम का मदीना हो गया... कुफ्र के इस पुराने देश में अजान की आवाज इतनी ऊँची उठी कि बगदाद और मदीना तक सुनाई पड़ने लगी और जमजम के कुण्ड तक गूंजने लगी. ..इस्लाम की तलवार न देश को उसी तरह शुद्ध कर दिया जिस तरह सूरज पृथ्वी को शुद्ध कर देता है।"

शुद अज़ शमशीरे इस्लाम आँ जमीं पाक।
चुनाँ कज़ आफताबे आसमाँ खाक।।[23]

निष्कर्ष

इससे साफ है कि एक तरफ तो सूफी प्रेम की पीर के गायक बने रहे वहीं दूसरी तरफ शाहेवक्त की प्रशंसा में जय–जयकार करने वाले। इस्लामी साम्राज्य विस्तार में योगदान भी इनकी ईश्वर प्राप्ति वाली ही साधना का अभिन्न अंग बन गया।

सन्दर्भ सूची

[1]. मध्य एसिया का इतिहास, खण्ड–1, प्रथम संस्करण, राहुल सांकृत्यायन, बिहार–राष्ट्रभाषा परिषद पटना, पृ0 256
[2]. तसव्वुफ अथवा सूफीमत, तृतीय संस्करण, चन्द्रवली पाण्डे, सरस्वती मन्दिर जतनबर, वाराणसी, पृ0 40
[3]. जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डा0 सरला, शुक्ल, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ, पृ0 15
[4]. जायसी ग्रन्थवली, सम्पादक, आ0 रामचन्द्र शुक्ल, लोकभारतीय, पृ0 119
[5]. सूफीमत साधना और साहित्य, प्र0 संस्करण, रामपूजन तिवारी, ज्ञान मण्डल लिमिटेड वाराणसी, पृ0 215–16
[6]. मलिक मुहम्मद जायसी, रामरतन भटनागर, किताब महल, पृ0 11
[7]. Rabia the mytic (1928) studies in Early mystiasm in the near and middle East (1931), उद्धृत, सूफीमत साधना और साहित्य, प्र0सं0, रामपूजन तिवारी, ज्ञानमण्डल लि0 वाराणसी, पृ0 224–25
[8]. सूफीमत साधना और साहित्य, प्र0सं0, रामपूजन तिवारी, ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी, पृ0 241–212
[9]. वही, पृ0 243
[10].जायसी के परवर्ती हिन्दी सूफी कवि और काव्य, डा0 सरला शुक्ल, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ, पृ0 16
[11].सलातीने देहली के मजहबी रूजहानात (उर्दू), देहली (1981) उद्धृत, तसब्बुफ का उत्कर्ष एवं सूफियों का इतिहास, डा0 मुहम्मद हि0 सिद्दीकी, संजय प्रकाशन, पृ0 67
[12].वही, पृ0 68 13. वही, पृ0 79 14. वही, पृ0 81
[13].15. सूफी सन्त अमीर खुसरो, प्र0 सं0, डा0 परमानन्द पांचाल, इन्द्रप्रस्थ इण्टरनेशनल, पृ0 17
[14].16. कबि के बोल खरग हिरवानी, विजयदेव नारायण साही।
[15].17. चांदायन, प्र0सं0, सम्पादक माताप्रसाद गुप्त, प्रामाणिक प्रकाशन आगरा, पृ07
[16].18. पद्मावत, श्री वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन झाँसी, पृ0 12
[17].19. वही, पृ0 13
[18].20. वही, पृ0 13
[19].21. वही, पृ0 15
[20].22. हिन्दी प्रेमगाथा काव्य–संग्रह द्वि०सं०, सम्पादक, श्री गणेश प्रसाद द्विवेदी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी उ0प्र0 इलाहाबाद, पृ0184
[21].23. कबि के बोल खरग हिरवानी, विजयदेव नारायण साही।

RRIJM 2015, All Rights Reserved